International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(1): 38-40

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(1): 38-40
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 21-11-2019
Accepted: 24-12-2019

डॉ. महावीरप्रसादसारस्वत
प्रोफेसर व्याकरण, श्री गंगा शार्दूल राजकीय आचार्य संस्कृत कॉलेज, बीकानेर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. महावीरप्रसादसारस्वत
प्रोफेसर व्याकरण, श्री गंगा शार्दूल राजकीय आचार्य संस्कृत कॉलेज, बीकानेर, राजस्थान, भारत

अधिकरणकारकविमर्श

डॉ. महावीरप्रसादसारस्वत

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2020.v6.i1a.1951

प्रस्तावना

वाक्य में पाये जाने वाले क्रियाजनक छः कारकों मे अन्तिक कारक अधिकरण के रूप में गिनाया गया है। जैसा कि सबको विदित है कि प्रत्येक कारक किसी ना किसी रूप में क्रियानिष्पादक होता है, क्रियासिद्धि में उपकारक होता है। अतः क्रियासिद्धि में उपकारक प्रत्येक वस्तु सामान्यरूप से कारक होती है, तथा उसकी उपकारकता की प्रकृतिविशेष के कारण वह विशेषरूप से कर्ताकर्मादि बन जाती है। इसी तरह सामान्यरूप से कारक होता हुआ विशेषरूप से अधिकरण संज्ञावाला वह पदार्थ क्या है? वह क्रियासिद्धि में किस प्रकार की विशेष उपकारकता के कारण इस संज्ञा को प्राप्त होता है ? अर्थात् यों कहा जा सकता है कि अधिकरण, क्रिया का निष्पादक किस तरह होता है?

इन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए हमे भाषाशास्त्र के मूलतत्त्वों को बीजरूप में अपने सूत्रों में रखने वाले महावैयाकरण महर्षि पाणिनि की ओर देखना चाहिए। उन्होंने गंभीर किन्तु सीधे सरलशब्दों में सूत्र रचा है। [1]आधारोऽधिकरणम्।

वे कहते है आधार की अधिकरण संज्ञा होती है अर्थात् आधार ही अधिकरण है। प्रश्न होगा, किसका आधार? अर्थात् आधार शब्द आधेयसाकांक्ष है, आधार किसी आधेय का ही हो सकता है। उस आधार का आधेय कौन है? यहाँ यदि प्रकृत प्रसंग को देखा जाय तो कारके का अधिकार है। चूकिं क्रियाजनक को कारक कहा गया है, अतः अधिकरण कारक भी क्रिया का जनक ही होगा, ऐसी स्थिति में क्रिया का आधार ही यहा इष्ट होगा अर्थात् क्रिया का आधार अधिकरण कहलाता है, यह सूत्र का सामान्य अर्थ हुआ। किन्तु स्थिति अभी भी अस्पष्ट है। क्योंकि क्रिया का अर्थ धात्वर्थ फल व व्यापार है। अतः क्रिया के आधार का आशय होगा फलाधार व व्यापाराधार अर्थात् क्रमशः कर्म व कर्ता। विक्लित्यादिफल कर्मनिष्ठ होता है अतः कर्म फलाश्रय या फलाधार होता है, इसी तरह विक्लित्याद्यनुकूलव्यापार कर्तृनिष्ठ होने से व्यापाराश्रय या व्यापाराधार कर्ता होता है।

क्या इस प्रकार क्रिया के साक्षात् आधार (फलाधार व व्यापाराधार) को अधिकरण माना जाय? नहीं, ऐसा नहीं माना जा सकता। क्योंकि क्रिया के साक्षात् आधार की तो कर्तृसंज्ञा व कर्म संज्ञा होती है अतः इन संज्ञाओं के द्वारा अधिकरण संज्ञा का बोध हो जायेगा, निषेध हो जायेगा। अतः क्रिया का साक्षात् तो नहीं किन्तु असाक्षात् या परम्परया जो आधार हो, उसी को अधिकरण माना जाना चाहिए। परम्परया या असाक्षात् क्रियाधार का तात्पर्य कर्तृकर्मरूपसाक्षात्क्रियाधार के आधार में है। अर्थात् कर्ता व कर्म का जो आधार है, वह साक्षात् रूप से कर्ता व कर्म का आधार होगा तथा परम्परया तन्निष्ठ क्रिया का भी आधार होगा। अतएव भट्टोजिदीक्षित ने पाणिनि के उक्त सूत्र को वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में इस प्रकार स्पष्ट किया है–

> कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणसंज्ञः स्यात्।

अर्थात् कर्ता व कर्म के द्वारा उनमें रहने वाली क्रिया (क्रमशः व्यापारात्मकक्रिया व फलात्मिका क्रिया) के आधाररूप क्रियासिद्ध्युपकारक कारक को अधिकरण कहा जाता है।

फलतः सप्तम्यधिकरणे च २/३/३६ पाणिनि सूत्र के अनुसार अनुक्त अधिकरणसंज्ञक शब्द वाक्य में सप्तम्यन्तपद के रूप में रहता है।

चैत्रः कक्षायाम् अधीते इस वाक्य मे कक्षायाम् यह सप्तम्यन्तपद अधिकरण कारक है। यह अध्ययनक्रिया का आधार है। यद्यपि साक्षात् रूप से, अध्ययनक्रिया चैत्रनिष्ठ है अतः चैत्र ही क्रियाधार है, किन्तु क्रियाधार चैत्ररूपकर्ता का आधार कक्षा है, अतः कक्षा चैत्र के द्वारा क्रिया का भी परम्परया आधार बन

रही है, अतः कक्षा भी क्रियाधार है, अतः वही अधिकरण संज्ञक है, उसका सप्तम्यन्त के रूप में प्रयोग हुआ है। चैत्र साक्षात् क्रियाधार होने से कर्ता ही रहता है।

स्थाल्याम् ओदनं पचति चैत्रः इस वाक्यं में स्थाल्यां यह सप्तम्यन्तपद अधिकरण कारक है। यह भी क्रियाधार है। विक्लितिरूपफलात्मकक्रिया का साक्षात् आधार तो ओदन है, अतः फलाश्रयत्वात् वह कर्मसंज्ञक होकर द्वितीयान्त के रूप में प्रयुक्त हुआ है। उस ओदनरूपकर्म का आधार स्थाली है। इस प्रकार स्थाली साक्षात् सम्बन्ध से ओदन का आधार है, किन्तु परम्परया ओदन में रहने वाली विक्लितिरूपफल का भी आधार है। अतः यह (स्थाली) कर्मद्वारा क्रिया का आधार है।

भर्तृहरि का अधिकरणविषयक मन्तव्य

भर्तृहरि भी अधिकरण के विषय में इसी प्रकार का मन्तव्य रखते हैं। वाक्यपदीय के साधनसमुदेश्य (तृतीयकाण्ड) अधिकरणाधिकार में वे लिखते हैं –

> [2]कर्तृकर्मव्यवहितामसाक्षाद्धारयत् क्रियाम्।
> उपकुर्व्वत् क्रियासिद्धौ शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्।।

अर्थात कर्ता व कर्म से व्यवहितक्रिया को असाक्षात् यानी परम्परया धारण करता हुआ क्रियासिद्धि अर्थात् फलनिष्पत्ति मे उपकारक कारक अधिकरण कहलाता है। इसका वही आशय हुआ जो पूर्ववर्णित है। कर्ता व कर्म से व्यवहितक्रिया से तात्पर्य यह है कि क्रिया और उस कारक के मध्य साक्षात् आधाराधेय सम्बन्ध नहीं होता अपितु बीच में कर्ता या कर्म का व्यवधान रहता है। कटे आस्ते (चटाई पर बैठता है) स्थाल्यां पचति (पात्र में पकाता है), इन वाक्यों में देखा जा सकता है आसनक्रिया व पाकक्रिया का साक्षात् आधार तो क्रमशः कर्ता व ओदनादि है, उन साक्षात् आधारों का आधार कट व स्थाली है। अतः उन क्रियाओं (आसन व पाक) व इन आधारों (कट व स्थाली) के मध्य क्रिया के साक्षात् आधाररूप चैत्रादि व ओदनादि व्यवधानरूप में विद्यमान हैं। यह लोक में भी देखा जाता है, जो पदार्थ किसी का आधार बनता है, वह पदार्थ आधेयनिष्ठपदार्थ का भी परम्परया आधार होता हे। डिब्बे में रखी वस्तु का साक्षात् आधार यद्यपि वह डिब्बा होता है किन्तु डिब्बा जहाँ रखा गया है वह मेज आदि, डिब्बे का साक्षात् तथा डिब्बे में रखी वस्तु का परम्परया आधार बनती ही है।

कौण्डभट्ट का मत

कौण्डभट्ट भी कर्तृकर्मद्वारक क्रियाश्रय को अधिकरण मानते हैं। वे सुबर्थनिर्णय के प्रंसग में वैयाकरणभूषणसार में कहते हैं – कारके इत्यधिकृत्य विहितसप्तम्याः क्रियाश्रयः इत्येव यद्यपि तात्पर्यम्, तथाप्यत्र कर्तृकर्मद्वारा तदाश्रयत्वमस्त्येव।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है क्रियाश्रय यदि अधिकरण है या सप्तम्यर्थ है तो फलरूपक्रियाश्रय व व्यापाररूपक्रियाश्रय (द्वितीयार्थ व कर्तृतृतीयार्थ) के साथ में इसका सांकर्य हो सकता है, इसके उत्तर में कहना चहिए कि सभी में क्रियाश्रयत्व होते हुए भी निरूपक भेद से ये सभी भिन्न सिद्ध होते हैं। फलनिष्ठ आधेयता से निरूपित आधार द्वितीयार्थ होता है तथा व्यापारनिष्ठ आधेयता निरूपित आधार तृतीयार्थ होता है। जबकि कर्तृकर्मनिष्ठव्यापारफलरूप आधेयता से निरूपित कर्तृकर्मरूप आधार द्वारा क्रियाधार सप्तम्यर्थ होता है। अतः कोई सांकर्य नहीं है।

इस प्रकार कौण्डभट्ट भी आधार या अधिकरण के विषय में वही बात कह रहे है जो पूर्वोल्लिखित है।

नागेश भट्ट अधिकरणत्व का विवेचन करते हुए लिखते हैं –

> [3]कर्तृकर्मद्वारकफलव्यापाराधारत्वमधिकरणत्वम्। यथा स्थाल्यामोदनं गृहे पचतीत्यादौ कर्मद्वारकविक्लितिरूपफलाधारः स्थाली कर्तृद्वारकव्यापाराधारो गृहमिति। पृष्ठ 294

अर्थात् स्थाल्याम् ओदनं गृहे पचति चैत्रः चैत्र घर में स्थाली में भात पकाता है। इस वाक्य में ओदनरूपकर्मद्वारकविक्लितिरूपफलात्मक क्रिया का आधार स्थाली तथा चैत्ररूपकर्तृद्वारक विक्लित्यनुकूलव्यापाररूपक्रिया का अधार गृह है। अतः ये अधिकरणसंज्ञक होने से स्थाल्याम् व गृहे ऐसा सप्तम्यन्त प्रयोग हुआ है। इस प्रकार इस वाक्य को देखने में स्पष्ट हुआ कि अधिकरण का लक्षण इस प्रकार बनाया जा सकता है –

कर्ता व कर्म के माध्यम से फल व व्यापाररूपक्रिया का आधार अधिकरण कहलाता है।

लघुशब्देन्दुशेखर में भी नागेशभट्ट ''आधारोऽधिकरणम्'' इस सूत्र की व्याख्या में यही मन्तव्य प्रकट करते है।

कारके इत्यधिकारात् क्रियाजनके एतत्प्रवृत्योपस्थितत्वादाधारः क्रियाया एव। तत्रेष्सिततमस्वतंत्रपदाभ्यां साक्षात्क्रियाधारयोः कर्तृकर्मसंज्ञाभ्यां बाधात् परम्परया तदाश्रयस्य ग्रहणम्। परम्परा च कर्तृकर्मद्वारिका एव।

अर्थात् यहाँ कारके का अधिकार होने से क्रिया का ही आधार (अधिकरणत्वेन) विवक्षित है, क्योंकि क्रियाजनक को ही कारक कहा जाता है। अतः आधेयरूप में क्रिया ही उपस्थित होगी। साक्षात् क्रियाधार की कर्तृसंज्ञा व कर्मसंज्ञा के द्वारा बाध होने से परम्परया क्रियाश्रय का ही ग्रहण करना चाहिए तथा परम्परा कर्त्ता या कर्म के माध्यम से ही है।

इस प्रकार नागेश भी अन्य सभी वैयाकरणों के ही मत में अपनी सहमति प्रकट करते हुए नजर आते है।

अधिकरण के भेद

अधिकरण के तीन भेद माने गये है। ये इस प्रकार है 1. औपश्लेषिक 2. वैषयिक व 3. अभिव्यापक। कौण्डभट्ट व नागेश दोनों ने ही इन तीनों भेदों को समानरूप से स्वीकार किया है। भर्तृहरि ने भी इन भेदों को माना है जिसका विवेचन हेलाराज ने किया है।

औपश्लेषिक अधिकरण

औपश्लेषिक शब्द की व्युत्पत्ति को यदि देखा जाय तो इसका अर्थ स्पष्ट हो जाता है, उप समीपे श्लेषः सम्बन्धः उपश्लेषः ततः आगतम् इति औपश्लेषिकम्।

अर्थात् जिस वस्तु के किसी एकदेश या एक अवयव के साथ साक्षात् क्रियाधार कर्ता या कर्म का आधाराधेय सम्बन्ध हो वह आधार औपश्लेषिक कहलाता है। यथा कटे आस्ते। चैत्र आदि की स्थिति सम्पूर्ण चटाई पर नहीं है, अपितु वह उसके किसी एक भाग पर बैठा है। आसन क्रिया के साक्षात् आधारभूत कर्ता चैत्रादि का एकदेशीय संयोगसम्बन्ध से कट आधार बन रहा है, न कि सर्वावयवसंयोग सम्बन्ध से । अतः इस वाक्य में कटे यह औपलेषिक अधिकरण का उदाहरण है। इसी प्रकार गृहे वसति, कक्षायां पठति इत्यादि के विषय में भी जानना चाहिए।

वैषयिक अधिकरण

विषयाद् आगतं विषयसम्बन्धाद् वा आगतम् इति वैषयिकम्। अर्थात् विषयतासम्बन्ध से जो किसी का एतत्प्रकृतिक आधार बने वह वैषयिक अधिकरण होता है। यथा मोक्षे इच्छा अस्ति इस वाक्य में प्रयुक्त मोक्षे यह सम्पम्यन्तपद इसी प्रकार के आधार का वाचक है। मोक्ष कर्तृद्वारकसत्ता का आधार संयोग या समवायसम्बन्ध से नहीं है, अपितु मोक्षविषयक इच्छा होने से यह विषयतासम्बन्ध से वैषयिक आधार होता है। भर्तृहरि की मान्यता की हेलाराज ने व्याख्या करते हुए खे शकुनयः, गुरौ वसति, गुरौ भक्तिः इत्यादि वाक्यों में आकाश का तात्त्विकरूप से अवयवादिविभाग न होने से उसे वैषयिक आधार माना है। शिष्यों की गुरु के अधीन वृत्ति होने से गुरौ यह भी इसी प्रकार का आधार है।

अभिव्यापक अधिकरण

अभिव्याप्नोति इति अभिव्यापकम्। अर्थात् जो आधार सर्वावयवव्याप्त्या यानी किसी एकदेशसंयोगादि से नहीं, अपितु सम्पूर्ण आधार हो, वह अभिव्यापक कहलाता है। इसका आशय यह है कि आधेय का जिस आधार के सभी अवयवों से सम्बन्ध हो, ऐसा आधार ही अभिव्यापक कहलाता है। यथा तिलेषु तैलम्, दध्नि घृतम् इत्यादि वाक्यों में देखा जा सकता है कि तैल व घी क्रमशः तिल व दही के सम्पूर्ण अवयवों में व्याप्त है। ऐसा नहीं है कि दही के देशविशेष में घी है और अन्य में नहीं। न ही तिल के भागविशेष में तेल रहता है और दूसरे भाग में न रहता हो। तिल व दही के नाश होने पर आधेयभूत तैल व घृत भी नहीं बच पाते। अतः इस प्रकार के आधार ही अभिव्यापक आधार होते है।चूँकि कारक क्रिया का उपकार करते है, अतः ये क्रियोपकारक किस प्रकार है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जाना चाहिए कि तिल अपनी स्थिति में तैल का उपकारक है। यदि उसकी स्थिति न रहे, वह नष्ट हो जाय, तो तैल भी नष्ट भ्रष्ट हो जायेगा।

सन्दर्भ

1. पाणिनि सूत्र 1/4/45।
2. वाक्यपदीय काण्ड 3 साधनसमुदेश अधिकरणाधिकार कारिका 148।
3. परमलघुमंजूषा पृष्ठ 294।